



कमलवीर प्रज्ञारत्न

जीवन की तीन गाथाएँ

अनुक्रमणिका

मनोगत	६
आमुख	८
रथ कहाँ है?	११
भाग - १	
१. जीवन का उद्देश्य : आनन्द या दुःखमुक्ति?	१६
२. मन का शोध	१८
३. गतिशील मन, गतिशील शरीर	२२
४. गतिशील साँस और उसकी गतिशील स्मृति	२६
५. शरीर साँस लेता है, शरीर साँस छोड़ता है	२८
६. सम्यक् साधना और सतिपट्टान	३०
७. बौध-भ्रमण	३२
८. जीवन की तीन गाथाएँ	३५
९. सम्यक् साधना और स्रोतापन्न अवस्था	४१
भाग - २	
१०. साधना की शुरुआत कहाँ से?	४९
११. साधना के लिए बैठना	५२
१२. पहले गति, फिर सति	५५
१३. शरीर चल रहा है (चक्रमण)	५७
परिशिष्ट - १	
सम्यक् अनापानसति	५९
परिशिष्ट - २	
सम्यक् मैत्रीभाव	६६

भाग - १

१. जीवन का उद्देश्य - आनंद या दुःखमुक्ति?

अधिकतर लोगों की यह समझ होती है कि अपना जीवन केवल आनंद और सुख की प्राप्ति तथा उनका उपभोग लेने के लिए है। ऊपरी तौर से देखा जाए तो ऐसा आभास होता है कि यह समझ सही है। क्योंकि मनुष्य को जीवन में आनंद और सुख तो चाहिए, वरना जीवन दुःख का बोझ बन जाएगा। लेकिन यह समझ सही होने बावजूद भी उचित नहीं है, सम्यक् नहीं है। यदि हम स्वयं से वह प्रश्न पूछें कि “मुझे आनंद और सुख किस लिए चाहिए?” तो इसका उत्तर ही होगा कि, “मुझे आनंद और सुख इसलिए चाहिए क्योंकि मैं दुःख नहीं चाहता।” इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य की जीवन में जो दौड़-धूप चलती है वह आनंद और सुख के लिए नहीं बल्कि दुःखमुक्ति के लिए चलती है।

मनुष्य के जीवन में यदि दुःख ही नहीं होगा तो उसे आनंद और सुख की आवश्यकता ही क्या? इसलिए दुःख जीवन का सत्य है। सारे दौड़-धूप के पीछे वही प्रेरणा है। लेकिन जिसके लिए सारी दौड़-धूप चलती है वह दुःखमुक्ति केवल आनंद और सुख के साधन इकट्ठा करने से या उनका केवल उपभोग कर लेने से नहीं मिलती, भले ही हम उनमें जीवन पर्यन्त रमे रहें। इस से दुःख को जरा सा भुलाया जा सकता है, बस! जीवन की यह वास्तविकता उस मनुष्य की समझ में आए बिना नहीं रहती, जो अपने जीवन के प्रति जागरूक रहता है। जितनी जल्दी यह समझ में आएगा, उतनी जल्दी वह दुःखमुक्ति के लिए प्रयत्न शुरू करेगा। यही तथागत बुद्ध के चार सत्त्यों की शिक्षा का आधार है।

‘दुःख है’ यह सत्य अनुभव से देखना (अर्थात् सति, स्मृति) और स्वीकार करना, यह पहला प्रमुख (आय) सत्य बुद्धशिक्षा का आरंभ बिन्दु है। यह सत्य समझने और स्वीकारने के बाद अगले तीन सत्त्यों का अनुभव लेने के लिए प्रयास

किया जा सकता है। दुःख समुदाय, दुःखनिरोध और दुःखनिरोधगामिनि प्रतिपदा ये बाकी के तीन सत्य हैं। उनका भावार्थ है - “दुःख का उदय विशिष्ट कारण अर्थात् तृष्णा के साथ होता है।”, “उस कारण का निवारण होने से दुःख का निवारण होता है।” और “दुःखनिवारण करने का उपाय है, मार्ग है।” इससे यह सिद्ध होता है कि दुःख का अस्तित्व स्वीकार किये बिना दुःखमुक्ति मिलना असंभव है। जिस प्रकार गंभीर बीमारी से ग्रस्त मनुष्य यह स्वीकार नहीं करेगा कि ‘मुझे बीमारी है’ तब तक वह बीमारी का इलाज करने के लिए तैयार नहीं होगा, वरना “मुझे कुछ नहीं हुआ” या “मुझे इलाज से डर लगता है” ऐसा कहने से जिस तरह उसकी बीमारी का इलाज नहीं होगा। उसी तरह “दुःख है” इस सत्य को स्वीकार किये बिना दुःखमुक्ति, जो हम चाहते हैं, संभव नहीं।

लेकिन दुःख एक अप्रिय और सहन न होनेवाला अनुभव है। इस कारण मनुष्य उसको स्वीकार करना, इतना ही नहीं उसके बारे में सोचना भी नहीं चाहता। इसीलिए वह दुःख को टालता रहता है और प्रिय लगने वाली आनंदमय सुख की कल्पनाओं में और कल्पना के साधनों में रमा रहता है। वह उनके लोभ में फँस जाता है और यही दुःखमुक्ति के मार्ग में मुख्य बाधा बनती है। अपने सारे आनंद और सुख के साधन तथा तत्संबंधित विचार अप्रिय लगने वाले दुःख से दूर रहने के लिए ही होते हैं। लेकिन दूर रहने से समस्या का हल नहीं निकलता। आगे कभी ना कभी, किसी ना किसी रूप में उसका सामना अटल रहता है, हमारी इच्छा हो या न हो।

मन के स्तर पर घटने वाली ये सभी मोहमय (अज्ञानमय) घटनाएँ नैसर्गिक कार्यकारणभाव के अनुसार घटती हैं, इन्हे हम जान बूझकर निर्माण नहीं करते। मुख्यतः अपने मन की और कुल जीवन की अबोध अवस्था अर्थात् अविद्या या अज्ञान अवस्था में वे घटती हैं। इसीलिए दुःखमुक्ति अर्थात् निब्बान का ध्येय साध्य करने के लिए पहले हमें अपने मन का शोध करना अत्यंत आवश्यक है।

□□□

२. मन का शोध

हमने यह देखा कि मन के स्तर पर घटने वाली नैसर्गिक घटनाएँ देखने के लिए और मुख्यतः दुःखमुक्ति का ध्येय साध्य करने के लिए हमें अपने मन का शोध करना आवश्यक है। यह कठिन काम उचित (सम्यक्) पद्धति से और प्रयत्नों (साधना) से आसान हो सकता है। लेकिन मन की नैसर्गिक घटनाएँ, नैसर्गिक पद्धति से ही देखना, उनका अनुभव करना संभव है, कृत्रिम पद्धति से नहीं। यह बात शुरू से ध्यान में रखना आवश्यक है।

पहले हम अपने मन का साधारण स्वरूप देखने का प्रयत्न करेंगे। यहाँ हम मन का सैद्धांतिक दृष्टि से नहीं बल्कि उसका प्रत्यक्ष अनुभव हो इस दृष्टि से और उसे दुःखमुक्ति की ओर, निष्ठा की ओर कैसे मोड़ा जाए इस दृष्टि से उसका स्वरूप देखने की कोशिश करेंगे। मन के बारे में अधिक विचार न करते हुए हम यह कह सकते हैं कि हमें मन का एहसास दो बातों के कारण होता है, सुख और दुःख। “वाह, मुझे बहुत अच्छा लगा”, “मुझे बहुत आनंद हुआ”, “मुझे वह कुछ ठीक नहीं लगा”, “मेरा तो दिल ही बैठ गया”, ये हमारे सुख-दुःख के कुछ उदाहरण हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि सुख-दुःख की संवेदनाओं (पालि-वेदना) का ‘एहसास होना’ यह मन का एक लक्षण है। हम विचार करते हैं और अपनी भावनाएँ व्यक्त कर सकते हैं। अर्थात् विचार करना यह भी मन का एक लक्षण है।

इस तरह मन का साधारण स्वरूप समझ में आ सकता है। लेकिन उसके स्पष्ट स्वरूप का एहसास हमें नहीं होता। क्यों? क्योंकि हमारा मन अत्यंत जटिल, गतिमान और गतिशील मानसिक घटनाओं से युक्त रहता है। इसलिए हमें इन घटनाओं का अर्थात् मन का स्पष्ट बोध नहीं होता। पहले यह बोध होना अत्यंत आवश्यक है।

धम्मपद के ‘चित्तवग्गो’ की कुछ गाथाएँ मन के कुछ लक्षण बताती हैं। इन लक्षणों के आधार से हमें अपने मन का अनुभव करने में सहायता मिलती

है। क्योंकि हम अनुभव कर सकेंगे ऐसे शब्दों में वह बतायीं गयी है। गाथाओं में जो कहा है उनका भावार्थ ऐसा है।....

‘मन संवेदनशील, चंचल, अस्थिर है। उसकी रक्षा करना, उसका निवारण करना, उसका निग्रह करना बड़ा कठिन होता है। वह इच्छानुसार जिधर चाहे उधर भागता है। उसे देखना, अनुभव करना कठिन होता है। वह चतुर, दूर भटकनेवाला और अकेले विचरण करने वाला होता है। वह (स्वयं) अशरीरी है परन्तु शरीररूपी गुफा में छुपा होता है। वह कभी मलिन तो कभी मलरहित रहता है, कभी भयग्रस्त तो कभी भयमुक्त रहता है। (‘चित्तवग्गो’ – गाथा क्र. ३३ से ३९) अभिधम्म में चित्त, चैतसिक, रूप (Form) और निब्बाण इन चार विभागों में मनकी ५२ अवस्थाओं का वर्णन है। महायानी अभिधम्म में उनकी संख्या ५१ है।

मन के सभी व्यापार, अच्छे-बुरे विचार, भावभावनाएँ आदि अनेक मानसिक क्रियाओं से अपना मन बना है और मानसिक क्रियाओं को ‘मनोधम्म’ (मनोधर्म) कहा है। मन इन मनोधम्मों से बनता है। इसलिए उसे मनोधम्मों से ही जाना जा सकता है। जिस तरह शरीर के अवयवों से शरीर बनता है। ये अवयव यानी यह शरीर, उसी तरह मनोधम्म यानी अपना मन। इन धम्मों का अनुभव करना ही मन को जानना है।

धम्मपद की पहली दो गाथाएँ सुखदुःख का निर्माण करने वाले मन का स्वरूप स्पष्ट करती है। वह इस तरह....

मनोपुब्बङ्ग गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया
मनसा चे पदुट्ठेन भासति या करोति वा
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं’ व वहतो पदं ॥१॥
मनोपुब्बङ्ग गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा
ततो नं सुखमन्वेति छाया’ व अनपायिनी ॥२॥

इन गाथाओं का आशय इस प्रकार है। सभी मनोधम्मों में मन अगुआ होता है, मन ही मुख्य है। मन मनोधम्मों में व्याप्त रहता है। हमारी वाणी और व्यवहार इनमें मन एक प्रेरक शक्ति है जैसा मन वैसी वाणी और व्यवहार होता है।

जिस तरह गाड़ी खींचने वाले के पैरों पीछे गाड़ी का पहिया आता है,

‘सृजन’ ला भेट म्हणजे... ज्ञान आणि मनोरंजन ह्याची हमीच.... भेट द्या..

www.esrujan.com

उसी तरह दूषित मन से प्रेरित वाणी और व्यवहार परिणामतः दुःखदायक होता है। उसी प्रकार अपनी छाया जैसे हमारे साथ रहती है वैसे सत्प्रवृत्त मन से प्रेरित वाणी और व्यवहार परिणामतः सुखदायक रहता है।

इस तरह मन ही अपने अस्तित्व का, जीवन का केंद्रस्थान है। इसलिए अपने मन का बोध यानी अपने जीवन का बोध है, अपने अस्तित्व का बोध है।

लेकिन अस्तित्व का केंद्रस्थान बना यह मन निश्चित कहाँ होता है?

इसके पहले जो उल्लेख आया है, उस गाथा के अनुसार 'दूर भटकनेवाला, अकेले रहनेवाला, अशरीरी मन (शरीररूपी) गुफा में बसा हुआ है' (धम्मपद गाथा क्र. ३७) मन शरीररूपी गुफा में छुपा होने के कारण मन का शोध और बोध शरीर के आधार से ही होना संभव है। हमें अपने शरीर का स्पष्ट बोध हुए बिना अपने मन का स्पष्ट बोध नहीं हो सकता।

लेकिन हमें अपने शरीर का और शरीर के आधार पर मन का बोध कैसे होगा? 'सम्यक् साधना' के आधार पर हम यहीं देखने का और अनुभव करने का प्रयास करेंगे।

सम्यक् साधना की दृष्टि से हम तीन बातों पर विशेष जोर देने वाले हैं।

१. मन शरीररूपी गुफा में होने के कारण शरीर के आधार से ही मन का स्पष्ट बोध हो सकता है।
२. मन 'गतिशील' है। (क्योंकि वह चंचल, अस्थिर, चपल, भटकनेवाला है।)
३. मन की नैसर्गिक घटनाएँ, नैसर्गिक पद्धति से ही अनुभव करना संभव है।

'अधिधम्म' यह सुत्त और विनय से संकलित और विकसित की हुई तथागत बुद्ध की तात्त्विक शिक्षा है, जो उनके महापरिनिर्वाण के ४०० से ५०० वर्षों बाद लिपिबद्ध हुई है। सम्यक् साधना की दृष्टि से हमारा पहला प्रयत्न अपने मन के प्रत्यक्ष संपर्क में जोड़ने के लिए है। मन का तात्त्विक स्वरूप देखना उसके बाद उपयुक्त हो सका है।

'साधना' शब्द के अर्थानुसार उसके नजदीक का पालि शब्द 'भावना' है। एक बार यह लगा था कि यह पुस्तक 'सम्यक् भावना' के नाम से लिखूँ लेकिन 'साधना' यह शब्द ध्यान, तपस्या इनके लिए मराठी या हिन्दी भाषिकों में अधिक प्रचलित है इसलिए 'भावना' शब्द का प्रयोग नहीं किया। 'भावना' इस पालि शब्द का अर्थ है विकास करना, बढ़ाना। जैसे, भेत्ताभावना, करुणाभावना, ध्यानभावना आदि (अर्थात् मैत्री, करुणा, ध्यान का विकास) और यह साध्य करने के लिए, प्रयत्नों की पराकाष्ठा करनी पड़ती है। वास्तव में 'भावना' में जो कुछ अंतर्भूत है, वह 'साधना' में समाया हुआ है। लेकिन शब्द महत्त्व के नहीं उनका

भावार्थ महत्त्व का है। दुःखमुक्ति (निब्बाण) का ध्येय साध्य करने के लिए हम सम्यक् (योग्य, आवश्यक) साधन चुनते हैं। (जैसे – ध्यान, कल्याण, मित्रता, धम्मचर्चा) और उसके अनुसार प्रयत्न करते हैं। यह सब 'साधना' (practice) शब्द से व्यक्त होता है।

'सम्यक्' शब्द का अधिक स्पष्टीकरण कृपया परिशिष्ट के 'सम्यक् आनापानसति' प्रकरण में देखिए।

□□□

